'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय' 'अमृतचन्द्राचार्य' कृत है। १० गाथा पूरी हो गयी। १० वीं गाथा में ऐसा कहा, पूछा था कि इस आत्मा की **अशुद्धता किस प्रकार से हुई?....** समझ में आया? और **जिसके कारण इसे अपने अर्थ की सिद्धि करनी पड़े?** आत्मा में अशुद्धता किस प्रकार हुई कि जिसे मिटाने और अपने प्रयोजन का पुरुषार्थ करना पड़े?—वह किस प्रकार है?—ऐसा पूछा था। समझ में आया? उसके उत्तर में कहा कि आत्मा स्वयं परिणमता, बदलता हुआ राग-द्वेष और अज्ञानभाव को करता है और उसे ही स्वयं भोक्ता अर्थात् भोगता है, यह सिद्ध किया। आत्मा स्वयं ही (करता और भोगता है।) कर्म भले निमित्त हो, परन्तु स्वयं आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर राग-द्वेष और मिथ्यात्वरूपी अज्ञानभावरूप स्वयं परिणमित होता है और परिणमित होता है, इसलिए वह उनका कर्ता होता है और परिणमता है, वह उनका भोक्ता होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

तब कहा कि **अशुद्ध आत्मा के अर्थ-सिद्धि कब होती है....** अब इस तरह जब इस प्रकार से आत्मा अनादि से अपने द्वारा मलिनभावरूप परिणमता है और इसलिए वह संसार में भटक रहा है; और इससे उसे अर्थ-सिद्धि करने के लिये पुरुषार्थ की आवश्यकता पड़ती है। कहो, ठीक है? तो इस **अशुद्ध आत्मा के अर्थ-सिद्धि कब**

www.vitragvani.com

होती है और अर्थ–सिद्धि किसे कहते हैं,.... दो बातें। कब हो और किसे कहलाये? आत्मा के प्रयोजन की सिद्धि कब हो? और प्रयोजन–सिद्धि किसे कहते हैं? कहो, समझ में आया? इसका उत्तर देते हैं—

सर्वविवर्त्तोत्तीर्णं यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक्पुरुषार्थसिद्धिमापन्न।।११।।

इसका हरिगीत तो नहीं, यह तो मूल है, हरिगीत कहाँ है! हरिगीत तो करे तो हो। यह तो करे बिना होता है — ऐसा कहते हैं यहाँ तो। अपनी पर्याय अपने से करे और पर की पर्याय पर हो — ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। इसका अर्थ।

अन्वयार्थ : जब उपर्युक्त अशुद्ध आत्मा.... उपर्युक्त अर्थात् आत्मा अपने आनन्द और ज्ञायक शुद्धस्वभाव को भूलकर मिथ्या–भ्रमणारूप और राग–द्वेषरूप, अशुद्धरूप हुआ है, ऐसा उपर्युक्त अशुद्ध आत्मा—यह बात सिद्ध की। **सर्व विभावों से पार होकर...** अब उस अशुद्धता के विकारभाव का नाश करके, विभावों से पार होकर... मिथ्यात्व और राग–द्वेष के परिणाम से परिणमता हुआ कर्ता–भोक्ता था, यह उसकी–आत्मा की उल्टी–विकार की अर्थसिद्धि थी।

अब निर्विकार की–आत्मा की शुद्धि की शान्ति कृतकृत्य हो, तब किस प्रकार (हो?) कि अशुद्ध आत्मा को सर्व विभाव, 'सर्व विभाव' शब्द यहाँ पड़ा है। जितनी अशुद्धि दशा में है, उससे पार होकर, उसका अभाव करके **अपने निष्कम्प....** देखो! उसका अभाव / व्यय करके और **अपने निष्कम्प चैतन्यस्वरूप को प्राप्त होता है...** ध्रुवपना तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति त्रिकाल है। उसकी वर्तमान दशा में अशुद्धता का परिणमन–मलिनभाव है। उसे, अपने निष्कम्प चैतन्यस्वरूप को प्राप्त होकर उस विभाव के अज्ञान और राग–द्वेष को व्यय करे, शुद्धि की पर्याय में प्राप्ति हो, ध्रुवपना तो कायम है। कहो, समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी दशा में मलिनता के परिणमन से अनादि का उसका कर्ता और भोक्ता है, वह दुःखी है। समझ में आया? वह अनादि का दुःखी है। एक क्षण भी उसे आनन्द का स्वाद नहीं। यदि आनन्द का एक क्षण भी स्वाद होवे, तब तो इसका मुक्तस्वरूप

www.vitragvani.com

प्रगट हुआ कहलाये। समझ में आया? यह परमात्मस्वरूप अपना शुद्ध आनन्द होने पर भी, उसकी दशा में अनादि से पुण्य और पाप तथा वे मेरे—ऐसा मिथ्यात्वभाव, उसरूप परिणमता हुआ, वह कार्य करता हुआ, कर्ता होकर उस विकार के भाव को भाव्य करता हुआ, उसका भोक्ता होता हुआ अनादि से परिभ्रमण निगोद से लेकर कर रहा है। समझ में आया? इसमें किसी को सुखी नहीं लिया। पैसेवाला, देववाला या उसे किसी को नहीं लिया। देव हुआ तो कहते (हैं), अनादि से दुःखी हुआ-ऐसा लिया। उसने तो विकार के परिणाम किये और भोगे। निगोद में होवे तो ऐसा और देव में होवे तो भी ऐसा, कहा वहाँ तो। इस सेठाई में होवे तो भी वह और गरीबी में होवे तो भी वह (अर्थात् दुःखी)। आकुलता के भाव से ही परिणमा है, उनका कर्ता हुआ है और उस आकुलता के भाव को ही भाव्य करके भोगा है। लो! यह तो ऐसा कहा। चौरासी के किसी अवतार में इसने इसके अतिरिक्त कुछ नहीं किया। कहो, बराबर है?

अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया तो भी वहाँ इसने विकार के भाव से ही परिणमन करके कर्ता होकर उसका कार्य किया है और विकारभाव को ही इसने भाव्य होकर भोगा है। कहो, समझ में आया? अनन्त बार दिगम्बर साधु हुआ-नग्न दिगम्बर, तो भी इसने वहाँ क्या किया और क्या भोगा है? यह तो उन शुभ-अशुभराग (रूप) परिणमा है, किये हैं और उन्हें इसने भोगा है। कहो, समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक गये हुए साधु का भाव जो मिथ्यादृष्टि, उसने भी यह किया था। समझ में आया? शुक्ल लेश्या कितनी ऊँची! और उसमें मिथ्यात्वभाव, उसका कर्ता होकर वह किया और उसे इसने भोगा; इसके अतिरिक्त इसने कुछ किया नहीं। लो! भाई! यह नौवें ग्रैवेयक गया, तब इसने ऐसा पालन किया। भाई! इतना तो सुखी हुआ, ऐसा कहते हैं, कितने ही जवाब देते हैं। भले ही द्रव्य (द्रव्यलिंग) पालन किया तो कुछ सुखी तो हुआ न? इतना तो है न? ऐसा कहते हैं। उत्तर दिया है उसमें—खानिया(चर्चा) में और सबमे। द्रव्यचारित्र भले था, द्रव्यचारित्र सुख का तो कारण है न? कहो, ठीक! यहाँ तो कहते हैं कि उस द्रव्यचारित्र के राग को जो परिणाम मन्द थे, उस दुःखरूप का कर्ता और दुःख का वेदन इसे था। आहाहा! समझ में आया?

अब उन **सर्व विभावों से पार होकर....** इस दुःख की जो अशुद्ध मलिन दशा

www.vitragvani.com

है। उससे रहित होकर। कैसे हुए जाए? उस अपने स्वरूप का आश्रय करके, कहेंगे। **अपने निष्कम्प चैतन्यस्वरूप को प्राप्त होता है...** स्वयं शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, उसे अलम्बन कर पर्याय में अपने निष्कम्प चैतन्यस्वरूप को दशा में प्राप्त करता है। कहो, समझ में आया इसमें? जिस अज्ञान और राग-द्वेष को जो पर्यायरूप से प्राप्त था, करता-भोगता था, वह जब पुरुषार्थ से स्वभाव शुद्ध चैतन्य को अवलम्बता है—शुद्ध ज्ञायकभाव-आनन्द को अवलम्बता है, तब उसकी दशा में पूर्व की दशा का नाश होकर निष्कम्प अवस्था की निर्मलता को वह आत्मा प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

तब यह आत्मा उस सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ के प्रयोजन की सिद्धि को प्राप्त होता हुआ.... लो! तब वह आत्मा, जो उल्टे पुरुषार्थ से अज्ञान में, राग-द्वेष के कर्ता-भोक्ता में था, वह जब शुद्ध चैतन्य के अवलम्बन में आया, तब **सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ के प्रयोजन की सिद्धि को प्राप्त होता हुआ कृतकृत्य होता है।** सुख की, शान्ति की, आनन्द की पूर्ण पर्याय जिसे प्रगट होती है। कृतकृत्य—सब कार्य किये - ऐसी पूर्णदशा को पाता है। लो! यह शब्दार्थ किया। समझ में आया?

टीका : 'स यदा सर्वविवर्त्तोत्तीर्णं चैतन्यमचलमाप्नोति तदा कृतकृत्यः भवति' आत्मा की अर्थसिद्धि कब हो—उसका उत्तर है कि **रागादि भावों से लिप्त वही आत्मा....** राग, मिथ्यात्व-सम्बन्धी का राग, वह सब राग है-कषाय है। मिथ्यात्व, राग-द्वेष, **रागादि भावों से लिप्त वही आत्मा....** देखो! कर्म से लिप्त यहाँ नहीं लिया। समझ में आया? जिसे मिटाया जा सकता है, वह बात ली है। कर्म का मिटाना या बाँधना कुछ इसके अधिकार में नहीं है। यह पर्याय में राग-द्वेष और मिथ्यात्व के भाव से-मलिनदशा से **लिप्त वही आत्मा जब सर्व विभावों से पार होकर....** विभाव परिणाम का अभाव करके **अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को....** अपना चैतन्य शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा... व्याख्या की। आत्मा कैसा? कि चैतन्यस्वरूप आत्मा है। मलिन परिणाम, वह कहीं उसका मूलस्वरूप नहीं है। समझ में आया?

अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा को, अपना चैतन्य, आनन्द आदि—चैतन्य में सभी गुण आ गये। ऐसे शुद्ध **चैतन्यस्वरूप आत्मा को निःशंकतापूर्वक प्राप्त होता है,....**

www.vitragvani.com

पहले नि:संदेहरूप से प्राप्त होता है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, निर्मलानन्द हूँ—ऐसे अन्तर नि:शंकरूप से, दृष्टिरूप से, स्थिरतारूप से प्राप्त होता है। **तब वही आत्मा कृतकृत्य होता है।** तब वही आत्मा समस्त कार्य पूर्ण किये - ऐसा होता है। देखो! इसमें कर्म की बात याद नहीं की कि कर्म बाँधे थे, उन्हें छोड़े, यह बात नहीं ली। समझ में आया? क्योंकि कर्म का बाँधना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है, वैसे उन्हें छोड़ना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं है; वे तो स्वयं अपनी शक्ति से बँधते हैं और शक्ति से टूटते हैं। वह उनकी सामर्थ्य का कार्य उनमें रहता है। समझ में आया?

कैसा है यह आत्मा? 'सम्यक्पुरुषार्थसिद्धिमापन्न'.... लो! यह अर्थसिद्धि। **सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ की सिद्धि को प्राप्त हुआ है।** अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा, उसके अन्तर्मुख होकर जो पर्याय में प्राप्त हुआ। सम्यक् प्रकार से पुरुषार्थ—स्वभाव की सन्मुखता का जो पुरुषार्थ हुआ, उसकी सिद्धि को प्राप्त हुआ। पूर्ण सिद्धि को प्राप्त हुआ। पुरुषार्थ का कार्य शुद्ध चैतन्यमूर्ति की प्राप्ति, वह कार्य प्रगट हुआ। लो! यहाँ तो अन्दर की अन्दर बातें वर्णन की। कर्म नहीं, शरीर नहीं, संयोग छोड़ने-बोड़ने की बात भी इसमें कहीं नहीं की। समझ में आया? इसकी वर्तमान पर्याय में मलिनता का परिणमन कर्ता-भोक्तारूप से कर रहा है। उसे शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के अवलम्बन से पर्याय में नि:शंक, नि:शंक, निष्कम्प—ऐसी अवस्था को प्राप्त होना, उसे मुक्तदशा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

भावार्थ : जब यह आत्मा स्व-पर भेदविज्ञान से.... देखो! विस्तार करते हैं। अनादि से स्व-पर की एकता थी। अशुद्ध पुण्य-पाप के भावरूप परिणमते, वह मेरा कार्य है, उसका कर्ता (मैं हूँ)—ऐसे एकपने की बुद्धि से होता (था)। उसे स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा (अर्थात्) विकारी परिणाम, शरीरादि पर और मेरा स्वद्रव्य चैतन्यस्वरूप आत्मा—ऐसे स्व-पर भेदविज्ञान द्वारा। स्व-चैतन्यस्वरूप आत्मा; पर-शरीरादि, मलिन परिणाम, उन्हें **भिन्न जाने तब "यह भला-इष्ट, यह बुरा-अनिष्ट" ऐसी बुद्धि का त्याग कर देता है।** यहाँ शरीर से (बात) उठायी है (बात), शरीरादि परवस्तु। **परद्रव्य को भिन्न जाने....** अपने आत्मा के पदार्थ से शरीर, कर्म, वाणी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, पर—ये सब स्व-पर के भेदज्ञान द्वारा (भिन्न जाने)। देखो! इस द्वारा-ऐसा कहा।

www.vitragvani.com

परद्रव्य को भिन्न जाने तब ''यह भला–इष्ट, यह बुरा–अनिष्ट'' ऐसी बुद्धि का त्याग कर देता है। वे भिन्न हैं। उनमें भला–बुरा है नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसी बुद्धि का त्याग करे–ऐसा कहा। भेदज्ञान द्वारा परद्रव्य को भिन्न जाने, तब यह भला–बुरा— ऐसी बुद्धि का त्याग करे–ऐसा कहा। परवस्तु को छोड़े या रखे, यह बात नहीं रही। यह परपदार्थ मुझे अनुकूल हैं और प्रतिकूल हैं—ऐसी बुद्धि, स्व और पर को भिन्न जानने से ऐसी बुद्धि का त्याग होता है। समझ में आया?

कारण कि जो कुछ भी भला–बुरा होता है, वह सब अपने परिणामों से ही होता है,..... ठीक! पर से नहीं। कल्पना में ऐसा माने कि इससे हुआ। ऐसा पर से होता नहीं। अपने परिणाम में, यह ठीक है माने, खोटे परिणाम में अठीक है – ऐसा माने, (किन्तु) पर से भला–बुरा कुछ होता नहीं। कर्म से भी भला–बुरा होता नहीं, शरीर से भला–बुरा होता नहीं। देव–गुरु–शास्त्र—पर से भी भला–बुरा होता नहीं। परद्रव्य में आता होगा या किसमें आता होगा यह? सम्मेदशिखर या शत्रुंजय मुझे भला है और दुश्मन, बुरा है, यह बात, स्व–और पर की भेदज्ञान बुद्धि द्वारा ऐसी बुद्धि का नाश होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

बहुत ही संक्षिप्त सिद्धान्त 'विदूषाम्'.... पुरुषार्थसिद्धि का उपाय बताऊँगा। परमागम में से यह उद्धार किया है। बहुत ही सार, सार (बात ली है)। इसमें पर का भला कर सकूँ... कहाँ गये? नहीं आये? वे सब पर का भला करनेवाले... कर दे, समझे नहीं कुछ। भला करते हैं और पर का बुरा करते हैं — यह बात ही मिथ्या है, कहते हैं। आत्मा, पर का भला–बुरा कर नहीं सकता और आत्मा में भी पर से भला–बुरा हो नहीं सकता। ठीक है? जो हित के अर्थी हों, कुटुम्ब, मित्र वे तो आत्मा का कुछ भला करे या नहीं? देव–गुरु–शास्त्र, आत्मा का भला करे या नहीं? ये दुश्मन, शत्रु, सर्प, बिच्छु आत्मा को नुकसान–बुरा करे या नहीं? तब कहते हैं कि यह भले–बुरे की जो बुद्धि थी, वह स्व–पर को भिन्न जानने से, पर मेरा भला–बुरा करता है — इस बुद्धि का वहाँ नाश होता है। पर मुझसे भिन्न; वह मुझे भला–बुरा कैसे करे?

शरीर अच्छा होवे तो धर्म हो, शरीर रोगी होवे तो धर्म न हो—यह बुद्धि, स्व और

www.vitragvani.com

पर को पृथक् जानने से इस बुद्धि का नाश होता है, यह बुद्धि नहीं रहती। कहो 'शरीराद्यं खलु धर्म साधनम्' नहीं आता? धर्म का साधन शरीर है तो शरीर निरोगी हो, ठीक से श्वास लिया जाता हो, कफ बाधक न हो... यह तो शरीर में शूल आता कहे, भगवान-भगवान करो। पहला कहे - भाई! अब अभी भगवान याद नहीं। पोरबन्दरवाला है, नाम भूल गये। गिरधरभाई! भगवान-भगवान करो। गिरधरभाई! अभी तक सामायिक और प्रौषध बहुत किये हैं। अभी भगवान याद... नहीं। गोला निकला है, वायु का गोला ऐसा चढ़ा है... अभी भगवान-भगवान छोड़ दो, अभी रहने दो। अभी इसमें क्या होता है, यह देखना है। पीड़ा... पीड़ा... अन्दर शूल उठे न? गोला (चढ़े)... कहीं नजर डाले पड़ती नहीं, कहीं दूसरा श्वास नहीं लिया जाता। भगवान... भगवान कुछ (नहीं)। अभी भगवान (चले गये)। इस शरीर को-मुझे रोग हुआ, यह मुझे बुरा है—यह मान्यता इसकी खोटी है। शरीर में यह हुआ, इसलिए यहाँ आत्मा की शरण नहीं ले सकता - ऐसा नहीं है। पर मुझे भला-बुरा करता है — ऐसी बुद्धि इसे आत्मा की ओर नहीं जाने देती। समझ में आया? यह व्यवस्थित साधन रखूँ, शरीर ठीक रहे, यह हो, ऐसा हो।...

जब यह आत्मा अपनी और पर की भिन्नता का विज्ञान करे, उसके द्वारा शरीर, कर्म, परवस्तु आदि... कर्म भी आवे, कर्म कठोर हो और महा बुरे, कुछ मन्द पड़े न, तो मुझे ठीक पड़े। यह कर्म के प्रति राग और द्वेष है। भले-बुरे कर्म हैं नहीं।

जब स्व और पर की भिन्नता का ज्ञान करे और भिन्न जाने, तब उसमें, तब उसमें यह भला है, मुझे इष्ट है, यह बुरा है — ऐसी बुद्धि का त्याग करे। यह बुद्धि उसे रहे नहीं। स्व और पर; यह पर मुझे भला-बुरा करे, स्व-पर का भेदज्ञान होने पर यह बुद्धि नहीं रहती। स्व-पर की एकताबुद्धि है, वहाँ मुझे दूसरा भला कर सकता है और बुरा कर सकता है— ऐसा मानता है। मानता है, हों!

कारण कि जो कुछ भी भला-बुरा होता है, वह सब अपने परिणामों से ही होता है,... शुभराग करे, अशुभराग करे, धर्म के परिणाम करे तो भला और पाप के परिणाम करे तो बुरा; यह तो अपने परिणाम से होता है; पर के कारण कुछ नहीं। भाई! अब भगवान की प्रतिमा, देव-शास्त्र-गुरु, इनसे तो कुछ भला होता है या नहीं? इनसे नहीं

www.vitragvani.com

होता? तो फिर करना किसलिए? ज्ञान करते हैं। भगवान के पास जाकर पूजा नहीं करता? भक्ति करता है या नहीं? नामस्मरण करता है या नहीं? भगवान... भगवान... भगवान... यह तो राग है, परन्तु परवस्तु से यह भाव हुआ है – ऐसा नहीं। यह राग हुआ है, वह स्वयं से हुआ है; पर के कारण नहीं। यह चीज है, इसलिए यहाँ शुभराग हुआ; यह स्त्री-पुत्र है, इसलिए मुझे यह पापराग हुआ – ऐसा नहीं। समझ में आया? यह पापराग और पुण्यराग का परिणमन स्वयं ही स्वयं से करता है; पर के कारण नहीं होता – ऐसा कहते हैं। यह तो एकान्त हो जाएगा—वापस फिर ऐसा कहे—ऐसा यदि निश्चय मानूँगा तो एकान्त हो जाएगा। पर से भला-बुरा कुछ नहीं मानो तो फिर पर की सेवा, भक्ति, पूजा नहीं करे? समझ में आया? यहाँ तो देव-गुरु और शास्त्र, पंच परमेष्ठी भी आत्मा का भला नहीं कर सकते और सिर काटनेवाला शत्रु, वह आत्मा का बुरा नहीं कर सकता। कहो, समझ में आया?

भला-बुरा नहीं होता... जो कुछ, ऐसा। **वह सब अपने परिणामों से ही होता है,...** कहो, शुभराग करे तो पुण्य हो, अशुभ करे तो पाप होता है। दोनों को बुरा जाने और आत्मा के स्वभाव को भला जाने, स्वभाव की शान्ति प्रगट करे तो भला होता है। कहो, समझ में आया इसमें? **परद्रव्य के करने से भला-बुरा नहीं होता...** लो! इस कर्म से भी आत्मा में भला-बुरा नहीं होता। ठीक होगा? शरीर से भी आत्मा में भला या बुरा नहीं होता। शरीर में बहुत रोग हो गये, इसलिए भाई! परिणाम नहीं सुधारे जा सकते; यह बात मिथ्या है—ऐसा कहते हैं। शरीर चाहे जैसी स्थिति में हो, परद्रव्य आत्मा को बुरा नहीं कर सकता। यह शक्ति ही ऐसी है। शरीर में ताकत नहीं कि आत्मा का बुरा करे। शरीर बहुत अनुकूल, ऐसी निरोगता होवे तो ऐसा मानो सब कर सके—उपवास और त्याग (सब कर सके), इसलिए उसके कारण आत्मा को भला हो-ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

परद्रव्य के करने से भला-बुरा नहीं होता... दुश्मन से आत्मा में बुरा नहीं होता तथा देव-शास्त्र-गुरु और मित्रों से आत्मा में भला नहीं होता। **इसलिए सर्व परद्रव्यों में...** स्व-पर के भेदज्ञान के कारण से पर से भला-बुरा मानने की बुद्धि का त्याग होता

www.vitragvani.com

है। देखो! यह त्याग कहा। यह त्याग, त्याग किया। त्याग किया तो त्याग किसका? किसका त्याग हुआ? स्व-पर की पृथक्ता का ज्ञान होने पर मुझे पर से भला-बुरा होता है—ऐसी बुद्धि का त्याग (होता है), उसे यथार्थ त्याग कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? यह भला-बुरा मानने का जहाँ भाव है, वहाँ यथार्थतः खोटी बुद्धि का त्याग नहीं है; वह त्याग नहीं, वही भोग है इसका। यही इसे अत्यागभाव है। समझ में आया?

'शरीर से सुखी तो सुखी सर्व बातें' बहुत बोलते तुम्हारे, वे फँस गये हैं, दोनों फँस गये हैं... सौ जहाँ हो, वहाँ फँस गये हैं। 'शरीर से सुखी तो...' शोर मचाये, शोर मचाये। धूल भी सुखी नहीं है, कहते हैं। शरीर से क्या? यह तो मिट्टी / परद्रव्य है। इस परद्रव्य से भिन्न आत्मा को जानने पर, परद्रव्य से मेरा भला-बुरा होता है — इस बुद्धि का त्याग (हो), से यथार्थ (में) अज्ञान का त्याग कहा जाता है। इस अज्ञान का त्याग, वह वास्तविक त्याग है। अज्ञान का त्याग नहीं और बाहर का त्याग करके बैठे, और (माने कि) हमने त्याग किया है। परन्तु किसका त्याग? समझ में आया?

इसलिए सर्व परद्रव्यों में... देखो! अपने अतिरिक्त जितने परद्रव्य हैं, उनमें **राग-द्वेष भावों का त्याग कर देता है।** कितना त्याग हुआ, देखो! स्व चैतन्यस्वरूप आत्मा और पर शरीरादि समस्त अनन्त पदार्थ—दोनों को अन्तर में पृथक् जानने से, पर अनन्त द्रव्य हैं, उनसे मुझे नुकसान और लाभ होता है—ऐसी बुद्धि का परद्रव्य का त्याग होता है। यह पहला बड़ा त्याग है—ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

परद्रव्यों (को) छोड़ने-रखने की बात नहीं है। परद्रव्य तो कहाँ घुस गये हैं आत्मा को कि छोड़े और ग्रहे? पकड़ता कब है कि छोड़े? आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अनन्त पदार्थ मुझे भला करते हैं, बुरा करते हैं —ऐसा जो भाव (होता है), वह परद्रव्य से अपने को भिन्न जानने से, अनन्त परद्रव्य की बुद्धि का जो भाव कि यह मुझे भला-बुरा (करते हैं)—ऐसा अनन्त परबुद्धि का त्याग / अज्ञान का त्याग हो जाता है। ठीक है? अब हिन्दीवालों को धीरे-धीरे गुजराती भाषा सीख लेनी पड़ेगी। यह शोभालालजी हिन्दी हैं, धीरे-धीरे हो गये। यह भाई हो गये।

सर्व परद्रव्यों.... भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप है। ऐसा परद्रव्यों से भिन्नपने का

www.vitragvani.com

ज्ञान होने पर, अनन्त परद्रव्यों में, यह ठीक-अठीक है—ऐसी भले-बुरे की बुद्धि का वहाँ त्याग हो जाता है, यही बड़ा त्याग है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे परद्रव्य के प्रति भले-बुरे की बुद्धि का त्याग नहीं, वहाँ बाह्य का त्याग इसने किया—यह व्यवहार से भी नहीं कहा जा सकता। आहा! समझ में आया?

जो अवशता से... अब कहते हैं कि राग-द्वेषभाव का त्याग करे, तथापि किंचित् रागादि होवें तो? दृष्टि में बुद्धि का त्याग हुआ-ऐसा कहा न? ऐसी बुद्धि का त्याग करे। परद्रव्य अनन्त हैं; उनमें कोई द्रव्य, कोई रजकण या आत्मा मेरा भला नहीं कर सकता, कोई बुरा नहीं कर सकता। ऐसा जो पर से भिन्न भाव हुआ, तब अनन्त परद्रव्यों के प्रति बुद्धि का - यह नुकसान-लाभ करता है — ऐसा त्याग हो गया। अब कहते हैं कि ऐसा त्याग हुआ, इससे जो अब थोड़े रागादि होते हैं न? इनके कारण (पर के कारण) मुझे लाभ-नुकसान होता है—ऐसी बुद्धि का तो त्याग हुआ, स्व-पर को भिन्न करने से। समझ में आया?

आत्मा—चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा जाना और इसके अतिरिक्त अनन्त परपदार्थ भिन्न है—ऐसा जाना तो परपदार्थ को भला-बुरा मानने की अनन्त जो बुरी बुद्धि थी, उसका त्याग हुआ। स्व-पर को भिन्न मानने से, स्व-पर को पृथक् जानने से। अब कहते हैं कि ऐसा होने पर भी किंचित् पुरुषार्थ की (कमजोरी के कारण) **अवशता से रागादि उत्पन्न होता है,...** पर के कारण नहीं रहे अब। पर अच्छे, इसलिए राग और पर बुरे, इसलिए द्वेष-ऐसा नहीं रहा; परन्तु अब अपनी पुरुषार्थ की कमजोरी होवे तो, पुरुषार्थ की कमजोरी के कारण राग-द्वेष होवे तो। पहला मिथ्यात्वबुद्धि के राग-द्वेष का त्याग हुआ! समझ में आया?

मैं चैतन्यस्वरूप आत्मा हूँ, बस! मैं चैतन्यस्वरूप हूँ; परवस्तु पर है। यहाँ राग-द्वेष का फिर ऐसा किया, बीच में निकाला। पर में यहाँ राग नहीं कहा, पर में तो परद्रव्य ले लिये। परद्रव्य मुझसे भिन्न है और मैं उनसे भिन्न हूँ—ऐसा अन्तर में भेदज्ञान होने से पर-अनन्त पदार्थों से मुझे भले-बुरे का जो भाव था, वे भिन्न जानने से उस बुद्धि का त्याग हुआ अर्थात् मिथ्यादृष्टि का अज्ञानभाव था, वह त्याग हुआ। समझ में आया? तब कहते हैं, फिर

www.vitragvani.com

भी—ऐसी बुद्धि का त्याग होने के काल में भी—परद्रव्य मुझे लाभ-नुकसान नहीं करते, ऐसी बुद्धि (लाभ-नुकसान की बुद्धि) का त्याग हुआ। नुकसान नहीं करते, वे तो ज्ञेय हैं। जो कर्ता हो—ऐसी बुद्धि का—मिथ्यात्व का त्याग हुआ, परन्तु **अवशता से (पुरुषार्थ की निर्बलता से) रागादि उत्पन्न होता है...** तो भी परद्रव्य के कारण जो राग-द्वेष मानता (था), वह बुद्धि गयी, परन्तु अपनी कमजोरी के कारण अब जो राग-द्वेष रहे, **उसके नाश के लिये...** तो उनके नाश के लिये। देखो! कैसी शैली है! **अनुभव-अभ्यास में उद्यमशील रहता है।** समझ में आया?

दो न्याय रखे—स्व स्वरूप चैतन्य प्रभु और पर अनन्त शरीर, कर्म आदि सब, देव-गुरु-शास्त्र, स्त्री-कुटुम्ब-परिवार (आदि) अनन्त पदार्थों से मेरा स्वरूप भिन्न है। ऐसा जानने पर अनन्त पदार्थों से भला-बुरा मानने की बुद्धि का महान पहला अज्ञान का त्याग हुआ। पश्चात् कमजोरी के कारण हो, (उसका क्या करना)? भिन्न जाना, पर से भले-बुरे की बुद्धि गयी, तथापि अभी कमजोरी से (राग-द्वेष) होते हैं, उसका क्या करना? समझ में आया? गजब बात की है, हों! अपने अवशपने **रागादि उत्पन्न होता है, उसके नाश के लिये...** अपनी कमजोरी से उत्पन्न हो, वे अपने तीव्र अनुभव द्वारा नाश होते हैं। बस! वहाँ रही बात। कहो, समझ में आया इसमें?

उसके नाश के लिये अनुभव-अभ्यास में उद्यमशील रहता है। आत्मा का अनुभव करने का बारम्बार अभ्यास करे। आनन्दस्वरूप को अनुसरण कर होवे तो इस कमजोरी से होनेवाले राग-द्वेष का इस प्रकार से नाश होता है। इस प्रकार उनका नाश होता है। पर से पृथक् करने से, पर से भला-बुरा मानने की बुद्धि का त्याग होता है और कमजोरी से होनेवाले राग-द्वेष का स्वरूप के अनुभव से उनका नाश होता है। यह इसके उपाय। आहा! समझ में आया? है न पुस्तक सामने रखी है या नहीं? ऐसा करते हुए दोनों बातों हो गयीं। लों!

भगवान चैतन्यस्वरूप है—ऐसा जाना और उस स्वरूप में परद्रव्य नहीं, वे परद्रव्य पर में हैं। इससे उनसे भिन्न ज्ञान हुआ। इसके अनन्त परद्रव्यों की जो एकताबुद्धि लाभ-नुकसान की थी, ऐसी बुद्धि का वहाँ त्याग हुआ। अब अस्थिरता के राग-द्वेष रहे, उन्हें

www.vitragvani.com

किस प्रकार नाश करना ? यह तो पृथक् करके नाश किया ? यह और यह नहीं, इसमें वह नहीं; उसमें मैं नहीं—ऐसे पर से भेद करके उसकी बुद्धि का त्याग हुआ; परन्तु कमजोरी होती है, उसका क्या त्याग ? कि कमजोरी से राग-द्वेष होते हैं, उन्हें स्वभाव के अनुभव द्वारा उनका नाश होता है। समझ में आया ? बहुत सादी भाषा में है यह। शोभालालाजी!

अनुभव-अभ्यास में उद्यमशील रहता है। देखो! यह पुरुषार्थसिद्धि है न ? पहले तो भेदज्ञान करना, वह पुरुषार्थ है; उस पुरुषार्थ में पर से भले-बुरु की बुद्धि का त्याग हो गया। पश्चात् कमजोरी से राग-द्वेष होते हैं, उनका अन्तर स्वभावसन्मुख के अभ्यास से नाश होता है। इसमें पर से कुछ होता है—ऐसा नहीं आया, ऐसे (ही) पुण्य-पाप के परिणाम से आत्मा को लाभ होता है—ऐसा नहीं आया। समझ में आया ? **सर्वविवर्त्तोत्तीर्ण** सर्व वितर्क-विपरीत भाव उत्तीर्ण। आहा! भगवान आत्मा...! बहुत परन्तु संक्षिप्त भाषा में बहुत भाव का शास्त्र में से यह शास्त्र (बनाया है)।

भाई! तेरी दशा में, तेरे कारण से, मलिन परिणाम-मिथ्यात्व आदि अज्ञान के परिणमते हैं, वह उनका कर्ता-भोक्ता है—ऐसा निर्णय कराया। आहाहा! और उन्हें मिटाने के लिये पहले तो, भगवान चैतन्यस्वरूप आत्मा है, अनन्त पर वस्तुएँ—कर्म से लेकर सब परद्रव्य है—ऐसा भेदज्ञान करने से, पर (को) भिन्न जानने से, स्व को अपना जानने से, पर से मुझे लाभ-नुकसान होता है—ऐसी मिथ्याबुद्धि का, अज्ञान का नाश होता है। पश्चात् कमजोरी से होनेवाले राग-द्वेष के भाव, पर के कारण से नहीं, स्वभाव के कारण से नहीं। समझ में आया ? प्रतिकूल संयोग आया, इसलिए द्वेष होता है; अनुकूल संयोग आया इसलिए राग (होता है), यह तो बुद्धि पहले से गयी। अब अपने को अनुकूल-प्रतिकूल संयोग में स्वयं की कमजोरी के कारण से होनेवाला; पर के कारण से नहीं... समझ में आया ? अपनी कमजोरी के कारण से (होनेवाला राग-द्वेष)। समकिती को पुत्र मर गया—ऐसा बाहर से देखे। वह पुत्र मर गया, इसलिए उसे राग-द्वेष होते हैं—ऐसा नहीं, क्योंकि वह तो परद्रव्य है। उससे मुझे कुछ लाभ-नुकसान था नहीं। अब उस समय जरा-सा ऐसा रुदन का द्वेष आया, वह कहते हैं कि पर के कारण से नहीं आया। संयोग ऐसा हुआ है, इसलिए नहीं आया; कमजोरी के कारण आया है। संयोग के कारण से नहीं,

www.vitragvani.com

कमजोरी के कारण हुआ। वह स्वभाव की सबलता द्वारा नाश हो सकता है। समझ में आया? क्या ठीक है या नहीं?

ऐसा करते-करते... ऐसा करते हुए जब... ऐसा करते हुए। समझ में आया? भगवान आत्मा को और पर को पृथक् करते हुए, परद्रव्य के प्रति की बुद्धि का—भले-बुरे का नाश हुआ। कमजोरी से होनेवाले राग-द्वेष का स्वभाव के आश्रय से अनुभव करने पर नाश होता है। **ऐसा करते-करते जब सर्व विभावभावों का...** देखो! पहली मिथ्याबुद्धि का-विभाव का नाश हुआ; फिर अस्थिरता का अनुभव द्वारा नाश हुआ। **करते-करते जब...** 'टोडरमलजी' ने अर्थ भी बहुत सरस किया है! देखो! है या नहीं? शब्द-शब्द। (अभी) इससे हम चतुर हैं (-ऐसा लोग मानते हैं)।

ऐसा करते-करते जब... ऐसा करते हुए जब, ऐसा। दूसरा करते हुए नहीं। सर्व विभाव का नाश होता है, यह व्यय हो गया। एकत्वबुद्धि से होनेवाले विभाव का नाश हुआ, पर से भिन्न करने पर; अस्थिरता का नाश हुआ, स्व का अनुभव करने पर। तब हुआ क्या अब? उत्पन्न क्या हुआ? वह तो व्यय हुआ। समझ में आया? **चैतन्यमचलमाप्नोति**—ऐसा है न? **जब सर्व विभावभावों का नाश हो जाता है और अक्षुब्ध...** भगवान आत्मा, **अक्षुब्ध समुद्रवत्...** जैसे समुद्र डोलायमान न हो और ऐसे स्थिर जम पड़ा हो जब, ऐसे समय में। समझ में आया? अमुक समय में, नहीं? समुद्र ऐसे स्थिर हो जाता है, हों! कौन सा महीना होगा? श्रावण में तो डालमडोल होता है, किसी समय तो ऐसा स्थिर... स्थिर होता है। **अक्षुब्ध समुद्रवत्...** क्षोभायमान समुद्र नहीं होता वैसे।

शुद्धात्मस्वरूप में... भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप में **लवणवत्...** लवणवत्। जैसे नमक समुद्र में स्थिर होकर ठीक से समा जाता है न? ऐसे **लवणवत् परिणाम लीन हो जाता है,...** अपने परिणाम अपने में लीन होते हैं। समझ में आया? कहाँ तक? कैसे लीन होते हैं? कि **ध्याताध्येय का विकल्प भी नहीं रहता,...** मैं एक ध्यान करनेवाला हूँ और मेरी पूर्ण चीज, वह मुझे ध्येय है, यह भी एक भेद का विकल्प / राग है, यह भी न रहे। ऐसे अन्तर परिणाम शुद्ध चैतन्य में लीन होकर निष्कम्परूप से परिणमे, अक्षुब्ध समुद्र की भाँति। जैसे समुद्र में लवण / नमक समा गया हो, वैसे शुद्धात्मस्वरूप में

www.vitragvani.com

परिणाम लीन हो जाएँ—ऐसा कहते हैं। बड़ा समुद्र होता है न? (उसमें) लवण ऐसे एकमेक हो गया हो ठीक से। वैसे भगवान आत्मा, परद्रव्य से भिन्नता करते हुए, परद्रव्य के प्रति भले-बुरे की बुद्धि का नाश होने पर, कमजोरी से होनेवाले राग-द्वेष की शुद्धस्वरूप के अनुभव द्वारा नाश करने पर सर्वविभाव के उत्तीर्ण होने पर, वह वहाँ तक कि मैं ध्याता हूँ, ध्यान करनेवाला हूँ और यह ध्येय मेरी शुद्ध वस्तु पूर्ण, वह ध्येय है। पूर्ण वस्तु, वह ध्येय है, पूर्ण सामान्य, वह ध्येय है; ध्यान करनेवाला मैं हूँ—ऐसा भी अन्दर भेद उठता है, वह विकल्प / राग है। देखो! वहाँ ले गये अब। पहले पर की एकत्वबुद्धि का नाश किया, पश्चात् अस्थिरता का अनुभव के द्वारा नाश किया; पश्चात् ऐसा भी जो विकल्प जहाँ रहता है, उसका भी नाश (करते हैं।) **ऐसा भी नहीं जानता कि मैं शुद्धात्मस्वरूप का ध्यान कर रहा हूँ,...** यह शुद्धस्वरूप चैतन्य है, इसका ध्यान करता हूँ। यह शुद्धस्वरूप है, इसका मैं ध्यान करता हूँ। वहाँ तो राग हो गया। समझ में आया? **सर्वविवत्तोत्तीर्ण** वाह! कैसी संक्षिप्त शैली से पुरुषार्थसिद्धि-उपाय (बनाया है)।

मुमुक्षु : .....

उत्तर : यह आत्मा की सम्पदा कैसे निकलती है यह! यह पैसे की बात है! धूल कहाँ थी इसकी? वे तो जगत के दूसरे तत्त्व हैं। उसमें कहाँ ऐसा निकले? यह मुझे ठीक है—यह तो बुद्धि ही मिथ्यात्व है—ऐसा कहते हैं। पैसा मुझे ठीक है—(यह) बुद्धि ही मिथ्यात्वभाव है और निर्धनता, वह दुःख है—यह बुद्धि ही मिथ्यात्वभाव है। अनुकूल संयोग नहीं, इसलिए दुःखी—यही मिथ्यात्वभाव है और अनुकूल संयोग है; इसलिए ठीक है—यही मिथ्यात्वभाव है, मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! ए... मथुरभाई! यह क्या पूछते हैं तुम्हारे भाई! यह पैसा-पैसा करे... यहाँ तो कहते हैं... इनके भाई हैं। चालीस करोड़ रुपये हैं न? शान्तिलाल खुशाल—उनके मामा के लड़के हैं, यह भी मामा के लड़के हैं। ये बैठे... समझ में आया? पैसे में कुछ है या नहीं? —ऐसा पूछते हैं। इनके भाई को नौकरी के वर्ष के लाख रुपये देते हैं। उसमें होगा या नहीं कुछ? धूल भी नहीं, सुन न! (-ऐसा) कहते हैं यहाँ।

भगवान स्वद्रव्य चैतन्यस्वरूप आत्मा; परद्रव्य—दूसरे आत्मा सहित के सभी

www.vitragvani.com

रजकण आदि सब। ये सब मुझे लाभ और नुकसान करने की मान्यता है, वह महामिथ्यात्व और भ्रम है। जिससे लाभ माने, उसमें से राग हटता नहीं और नुकसान माने, इसलिए उससे द्वेष हटता नहीं। समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वरूप आत्मा और पर अनन्त जीव तथा परमाणु पर हैं—ऐसी जहाँ स्व और पर की भेदज्ञान शक्ति खिली तो अनन्त परद्रव्यों में, एक परद्रव्य में भी आत्मबुद्धि अर्थात् मुझे लाभबुद्धि-नुकसानबुद्धि थी, वह आत्मबुद्धि हुई, उन अनन्त के प्रति आत्मबुद्धि का त्याग हो गया। समझ में आया? इसका नाम वास्तविक मिथ्यात्व का, अज्ञान का त्याग, इसे वास्तविक त्याग कहते हैं। यह त्यागे बिना बाहर का चाहे जितना त्याग करे तो उसे अभिमान है कि मैंने त्याग किया, मैंने इतना छोड़ा। आज मैंने रस नहीं खाया। यह तो अभिमान है, मिथ्यात्व का अभिमान है। समझ में आया?

ये तो दोनों को भिन्न जानने से ही मिथ्यात्व का—पर के कारण लाभ-नुकसान की बुद्धि का त्याग होता है, इसके अतिरिक्त उसका त्याग नहीं होता और स्वरूप में पर के कारण से लाभ-नुकसान की बुद्धि का नाश हुआ, तथापि राग-द्वेष की कमजोरी तो रह गयी, उसके नाश की कैसे सिद्धि करना? कि स्वरूप के अनुभव से पुरुषार्थ की सिद्धि—ऐसा करने से उनका नाश होता है। फिर यह बुद्धि रह जाती है न? कि यह बुद्धि इसमें नहीं रहती। ध्याता और ध्येय—ऐसा भेद भी जहाँ लक्ष्य में नहीं रहता। आहा! और ऐसा न जाने कि मैं शुद्धात्मस्वरूप को ही ध्याता हूँ। आहाहा! भगवान ऐसा शुद्ध चैतन्य है, पूर्ण पवित्र है—ऐसा यह और मैं ध्याता हूँ—ऐसा दो पड़ गये न वापस इसमें? यह शुद्धस्वरूप है, यह शुद्ध स्वरूप है, इसका मैं ध्यान करता हूँ, इसमें मैं ध्यान करता हूँ, इसका ध्यान करता हूँ—ये दो (भेद) पड़ गये, ये दो (भेद) पड़ गये।

स्वयं ही तादात्म्यवृत्ति से शुद्धात्मस्वरूप होकर निष्कम्प परिणमन करता है,... यह छोड़ दे अन्दर से कि मैं ध्याता हूँ और शुद्धात्मा ध्याता हूँ, यह छोड़ दे। स्वयं ही तादात्म्यवृत्ति होकर बीच में फाड़ पड़ गयी अन्दर। मैं शुद्धात्मा को ध्याता हूँ, मैं ध्याता हूँ, ध्यान करता हूँ—ऐसा भी एक राग, उसे तादात्म्यस्वरूप के अन्तर एकाकार होकर छोड़ दे। **तादात्म्यवृत्ति से शुद्धात्मस्वरूप होकर निष्कम्प परिणमन करता है,...**

www.vitragvani.com

आहाहा! मेरु हिले नहीं, ऐसी स्थिरता हिले नहीं वहाँ। है न? '**अचलं आप्नोति**' निष्कम्परूप से परिणमे। उसे निष्कम्प कहा। अचल की व्याख्या दी। अर्थ में ही किया है न? अचल अर्थात् स्वयं का निष्कम्प। अन्वयार्थ में किया है। उसकी व्याख्या करते हैं। वाह रे... वाह...! समझ में आया?

पुरुषार्थसिद्धि का उपाय क्या? कहते हैं। पुरुषार्थसिद्धि कब की कहलाये? और वह पुरुषार्थसिद्धि क्या कहलाये? कि पर से भिन्न करके, अनुभव से अस्थिरता का नाश होकर, मैं शुद्ध अनुभवता हूँ—ऐसा विकल्प छूटकर अकेला निष्कम्परूप से शुद्धात्म-स्वरूप में लीन हो, **उस समय इस आत्मा ने जो कुछ करना था, वह कर लिया,...** आहाहा! समझ में आया? भिन्नता करने का कार्य किया; फिर अस्थिरता का अनुभव के द्वारा नाश करके कार्य किया; फिर मैं शुद्धात्मा हूँ और ध्याता हूँ—यह भी छूट गया। समझ में आता है? स्वरूप में लीन हुआ, वह कृतकृत्य हो गया। उसका कार्य वहाँ करने का था, वह पूरा हो गया। गजब बात, भाई! समझ में आया? इसमें कैसा व्रत पालना और कैसा यह करना, यह सब कुछ नहीं आया। इस समय कहते हैं न, व्रतादि का विकल्प, जो कमजोरी से आता है, उसमें वह आ गया। समझ में आया?

स्व-पर को भिन्न पाड़ने से पर सम्बन्धी बुद्धि का भाव कि यह मुझे लाभ-नुकसान और अनुकूल होवे तो लाभ तथा प्रतिकूल होवे तो नुकसान—ऐसी महान अनन्त विपरीत बुद्धि का नाश हो गया। फिर कमजोरी के कारण अन्दर जो व्रत आदि के विकल्प आते थे... कहो! उन्हें स्वभाव के अनुभव द्वारा उनका नाश किया। कहो, समझ में आया? यह इसका उपाय है, दूसरा कोई उपाय नहीं।

समय इस आत्मा ने जो कुछ करना था, वह कर लिया,... लो! **अब कुछ करना शेष नहीं रहा; इसलिए इसको कृतकृत्य कहते हैं।** लो! अन्तिम शब्द—'**भवति तदा कृतकृत्यः**' आहाहा! समझ में आया? गजब गाथा! एक-एक गाथा!! यह पहली बार वँचता है, हों! यह सब। नये-नये ग्रन्थ होते हैं न? योगसार और छहढाला और इष्टोपदेश—सब बहुत नया आया। आहाहा! शैली ही दिगम्बर सन्तों की, मूलमार्ग को पकड़कर चले हैं और उस मूलमार्ग की रीति ही कोई अलौकिक है। आहाहा!

www.vitragvani.com

इसको कृतकृत्य कहते हैं। इसी अवस्था को पुरुषार्थ की सिद्धि कहते हैं। है न? उसकी अवस्था में उसके पुरुषार्थ की सिद्धि हुई। **पुरुष का जो अर्थ अर्थात् प्रयोजनरूप कार्य उसकी सिद्धि जो होनी थी, वह हो गई।** लो! इस अनुसार पुरुषार्थ करने से जो कार्य हुआ; पुरुष का जो अर्थ अर्थात् प्रयोजन, उसका जो कार्य, उसकी जो सिद्धि होनी थी, वह इस प्रकार हो गयी। **इस अवस्था को जो प्राप्त हुआ, उस आत्मा को कृतकृत्य कहते हैं।** ऐसे आत्मा के सब कार्य पूरे हुए—ऐसा कहा जाता है। भेदज्ञान से कार्य शुरु किया है, दूसरा कार्य इसका नहीं। पर से भिन्न कार्य शुरु हुआ, फिर अस्थिरता का नाश करके ऐसा हुआ, फिर स्थिर हो गया, कार्य करने का पूरा हो गया; उसे कृतकृत्य कहा जाता है, उसे पुरुषार्थसिद्धि का उपाय कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)